नोबेल पुरस्कार

पूँजीवाद के तहत वैज्ञानिक मानवता के लिए नहीं बल्कि मुनाफ़े की सेवा करने के लिए अभिशप्त हैं

इस बार रसायनशास्त्र, भौतिकी और चिकित्सा का नोबेल पुरस्कार ऐसे वैज्ञानिकों को मिला है जिनकी खोजें मानवता के लिए बहुत लाभकारी हैं। रसायन का नोबेल पुरस्कार भारतीय मूल के अमेरिकी वैज्ञानिक वेंकटरमन रामकृष्णन, अमेरिका की येल यूनिवर्सिटी और हावर्ड ह्यूजेस मेडिकल इंस्टीट्यूट के टॉमस स्टाइट्ज़ और इज़रायल के वाइज़मान इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस की एडा योनाथ को दिया गया है। इन वैज्ञानिकों ने यह दर्शाया है कि राइबोसोम संरचना कैसी होती है और परमाणु के स्तर पर यह किस तरह काम करती है। राइबोसोम संरचना का पता लगाने के लिए, अलग-अलग काम कर रहे इन तीनों वैज्ञानिकों ने एक्सरे क्रिस्टलोग्राफी की तकनीक का प्रयोग किया और राइबोसोम में मौजूद लाखों परमाणुओं में से एक-एक परमाणु की स्थिति की मैपिंग की। जीवन की विभिन्न प्रक्रियाओं को वैज्ञानिक ढंग से समझने में मददगार होने के अलावा राइबोसोम संरचना के ज्ञान का चिकित्सा विज्ञान में बहुत अधिक उपयोग हो सकता है। अधिकांश एंटी बायोटिक दवाएँ रोग के बैक्टीरिया के राइबोसोम पर हमला करती हैं और इन वैज्ञानिकों की खोज के आधार पर अब ऐसी अधिक प्रभावी एंटी बायोटिक दवाओं का विकास सम्भव है जो म्यूटेशन के ज़रिए दवाओं के प्रतिरोधी रूप अख्तियार करने की बैक्टीरिया की क्षमता को ख़त्म कर सकती हैं।

भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दो ऐसे वैज्ञानिकों को दिया गया है जिनकी उपलब्धियों ने संचार प्रौद्योगिकी में हुए ज़बर्दस्त विकास की नींव रखने के साथ ही चिकित्सा विज्ञान को भी जबर्दस्त लाभ पहुँचाया है। इस बार भौतिकी का नोबेल इंग्लैण्ड की स्टैण्डर्ड टेले कम्युनिकेशन लेबोरेटरी और हांगकांग की चाइनीज़ यूनिवर्सिटी के चार्ल्स काओ तथा अमेरिका की बेल लेबोरेटरीज़ के विलियर्ड बॉयल और जॉर्ज ई. स्मिथ को दिया गया है। काओ को ऑप्टिकल फ़ाइबर के विकास के लिए यह पुरस्कार दिया गया है। ऑप्टिकल फ़ाइबर काँच के महीन धागे होते हैं जो वर्तमान विश्वव्यापी संचार नेटवर्कों की रीढ़ का काम कर रहे हैं। आज दुनिया भर में डेटा, टेक्स्ट, ध्वनि, चित्रों और वीडियो की भारी मात्रा का आदान-प्रदान करने वाला वैश्विक ब्रॉडबैण्ड संचार तन्त्र इन्हीं ऑप्टिकल फ़ाइबर से बना है। एक अनुमान के अनुसार अगर दुनिया भर में फैले सारे फ़ाइबरों को जोड़ा जाये तो क़रीब एक अरब किलोमीटर लम्बा धागा बन जायेगा जिससे धरती को 25,000 बार लपेटा जा सकता है।

पुरस्कार का दूसरा भाग अमेरिका की बेल लेबोरेट्रीज़ के 85 वर्षीय लिलियर्ड एस. बॉयल और 79 वर्षीय जार्ज ई. स्मिथ को सीसीडी (चार्ज-कपल्ड डिवाइस) सेंसर का आविष्कार करने के लिए दिया गया है। सीसीडी डिजिटल कैमरे की इलेक्ट्रॉनिक आँख होती है जिसकी बदौलत न सिर्फ़ तस्वीरों की प्रोसेसिंग और इंटरनेट आदि के ज़रिये उनका वितरण बेहद आसान हो गया है बल्कि अन्तरिक्ष विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में भी इसका बहुत बड़ा योगदान है।

चिकित्सा का नोबेल पुरस्कार अमेरिका के तीन वैज्ञानिकों, एलिज़ाबेथ एच. ब्लैकबर्न, कैरोल डब्ल्यू. ग्राइडर और जैक डब्ल्यू. जोस्टैक को दिया गया है। इन तीनों ने कोशिका जीवविज्ञान की ऐसी समस्या को हल किया है जिससे कैंसर और बुढ़ापे को रोकने में मदद मिलेगी।

ये सभी वैज्ञानिक ऐसी खोजों के लिए पुरस्कृत किये गये हैं जो उत्पादक शक्तियों को उन्नत करने और रोग, कष्ट और अज्ञान से लड़ने में इन्सानियत के लिए मददगार हैं। आज भी दुनियाभर में हज़ारों ऐसे वैज्ञानिक हैं जो इन्सानियत की बेहतरी के लिए वैज्ञानिक अनुसन्धान और अध्ययन में जुट हुए हैं। आज से 50 वर्ष पहले की तुलना में आज दुनिया में प्रयोगशालाओं और अनुसन्धान केन्द्रों का विराट और अत्याधुनिक तन्त्र विकसित हो चुका है। आज के वैज्ञानिक मैरी और पियरे क्यूरी की तरह रिसती छत वाले सर्द सायबानों में शोध नहीं करते, बकि करोड़ों डॉलर के निवेश से खड़ी की गयी सर्वसुविधा सम्पन्न प्रयोगशालाओं में काम करते हैं जहाँ उनकी उँगलियों के इशारे पर दुनियाभर की वैज्ञानिक जानकारियाँ कम्प्यूटर के स्क्रीन पर हाज़िर हो जाती हैं। लेकिन यह तस्वीर का सिर्फ़ एक पहलू है। तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि आज भी दुनिया की क़रीब तीन-चौथाई आबादी दरिद्रता, अभाव और अज्ञान में जी रही है। एक ओर वैज्ञानिक मनुष्य के जीन की सम्पूर्ण मैपिंग करके रोगों के पैदा होने की जड़ तक पहुँच रहे हैं, दूसरी ओर एशिया, अफ़्रीका और लातिन अमेरिका में हर वर्ष लाखों बच्चे ऐसी मामूली बीमारियों से मर जाते हैं जिनका इलाज सौ साल पहले ढूँढ़ा जा चुका है। एक ओर इन्सान चाँद पर पानी के चिह्न ढूँढ़ रहा है, दूसरी ओर दिल्ली और मुम्बई जैसे महानगरों तक में लाखों लोग बीमारियों से युक्त बदबूदार, दूषित पानी पीने के लिए मजबूर हैं।

इस स्थिति का कारण यह है कि विज्ञान और तकनोलॉजी आज स्वतन्त्र नहीं हैं। वे मुनाफ़े के विश्वव्यापी क़ारोबार के गुलाम हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में होने वाले समस्त अनुसन्धानों पर दैत्याकार बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों का नियन्त्रण है। केवल वही अनुसन्धान सफल हो पाते हैं जिन्हें ये दवा कम्पनियाँ अपना क़ारोबार और मुनाफ़े में उपयोगी पाती हैं। यही कारण

है कि चिकित्सा के क्षेत्र में होने वाले अनुसन्धान का बहुत भारी हिस्सा कॉस्मेटिक्स, बुढ़ापा रोकने या फ़िर ऐसे रोगों की महँगी दवाएँ विकसित करने में लगा हुआ है जो जीवनशैली सम्बन्धी रोग हैं तथा समाज के एक छोटे-से सम्पन्न हिस्से को प्रभावित करते हैं।

यही स्थिति विज्ञान की सभी शाखाओं की है। कम्प्यूटर और दूरसंचार उद्योग में हुए अभूतपूर्व विकास को ही लें जिसे "संचार क्रान्ति" बताया जा रहा है। एक अरब किलोमीटर से भी ज़्यादा लम्बे ऑप्टिकल फ़ाइबर नेटवर्क पर इण्टरनेट के ज़रिये आज बेहिसाब मात्रा में सूचनाओं का आदान-प्रदान हो रहा है। प्रतिदिन भेजे जाने वाले ईमेल की संख्या 210 अरब से अधिक हो चुकी है। लेकिन इस सूचना का तीन-चौथाई से भी अधिक हिस्सा निरर्थक और अनुत्पादक सूचनाओं का है। दूसरी ओर, दुनिया की बहुत बड़ी आबादी रोज़मर्रा के जीवन को बेहतर बनाने के लिए ज़रूरी बुनियादी सूचनाओं से भी वंचित है। दरअसल, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास पूरी सामाजिक संरचना से अलग नहीं हो सकता। अगर उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाना है, और उत्पादन की सभी कार्रवाइयों की चालक शक्ति मुनाफ़ा है, तो विज्ञान और प्रौद्योगिकी को भी मुनाफ़े के क़ारोबार की ही सेवा में लगना होगा। पहले भी वैज्ञानिक आविष्कार तब तक बेकार रहते थे जब तक कि कोई व्यापारी या उद्योगपति उनसे मुनाफ़ा कमाने की सम्भावना नहीं देख लेता था। मगर पूँजीवाद के विकास की अवस्था में ऐसे तमाम आविष्कार मुनाफ़ा कमाने के साथ-साथ एक बहुत बड़ी आबादी के जीवन को बेहतर बनाने के भी काम आते थे। लेकिन आज की दुनिया में एकाधिकारी पूँजीवाद इस सीमा तक पहुँच चुका है कि अपने मुनाफ़े को बचाने के लिए ढेरों वैज्ञानिक खोजों को दबा दिया जाता है।

आज के वैज्ञानिक क्यूरी दंपति, आइंस्टीन या बोर जितने स्वतन्त्र नहीं हैं, उनकी हैसियत सीधे बड़ी पूँजी की सेवा में लगे कर्मचारियों जैसी रह गयी है। यहाँ तक कि यूरोप और अमेरिका की अधिकांश बड़ी प्रयोगशालाएँ सीधे बड़ी-बड़ी कम्पनियों द्वारा संचालित हैं। ज़्यादातर विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों की प्रयोगशालाएँ भी कम्पनियों द्वारा प्रायोजित परियोजनाओं पर पर काम करती हैं।

अब यह परिघटना भारत सहित तीसरी दुनिया के बड़े देशों में भी तेज़ी से बढ़ रही है जहाँ आईआईटी जैसे संस्थानों में कॉम्पैक और आईबीएम जैसी कम्पनियाँ अपनी प्रयोगशालाएँ स्थापित कर रही हैं जिनमें आईआईटी के शिक्षक और छात्र इन कम्पनियों का मुनाफ़ा बढ़ाने वाली नयी तकनीकों पर शोध करते हैं। चिकित्सा संस्थानों में भी ऐसा ही हो रहा है जहाँ दवा कम्पनियों द्वारा प्रायोजित शोध परियोजनाओं की संख्या बढ़ती जा रही है।

कम्पनियों द्वारा प्रायोजित शोध का उद्देश्य व्यापक मानवता का हित नहीं बल्कि अपना मुनाफ़ा बढ़ाना होता है। इसीलिए करोड़ों लोगों के लिए उपयोगी सस्ती जीवनरक्षक दवाएँ विकसित करने के बजाय छोटी-सी आबादी के लिए महँगी दवाएँ और उपकरण विकसित करने पर अधिक ज़ोर होता है। इतना ही नहीं, ऐसे असंख्य उदाहरण हैं, जब नये आविष्कारों को इसलिए हतोत्साहित किया गया और दबाया गया क्योंकि उनके बाज़ार में आ जाने से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का एकाधिकार टूट जाता और उनका मुनाफ़ा कम हो जाता। दैत्याकार कम्पनियाँ नये आविष्कारों के पेटेण्टों को ख़रीदकर अक्सर इसलिए दबा लेती हैं क्योंकि पहले से मौजूद प्रौद्योगिकी से अधिकतम मुनाफ़ा उन्हें मिल रहा है तो नया निवेश क्यों करें। दूसरी कम्पनियाँ उस आविष्कार का उपयोग न कर सकें इसलिए उसे ख़रीदकर ठण्डे बस्ते में डाल दिया जाता है। संयुक्त राष्ट्र वाणिज्य एवं व्यापार संगठन (अंकटाड) की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के कुल वैज्ञानिक पेटेण्टों के क़रीब 95 प्रतिशत पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का क़ब्ज़ा है।

बहुतेरे वैज्ञानिक और आविष्कारक इसलिए घुटते रहते हैं क्योंकि उन्हें मौलिक अनुसन्धान करने की कोई स्वतन्त्रता ही नहीं होती। पूँजीवादी व्यवस्था में ही ऐसा हो सकता है कि एक ओर व्यापक आबादी बुनियादी ज़रूरतों की चीज़ों से भी वंचित है और दूसरी ओर "अति उत्पादन" का संकट विश्वव्यापी मन्दी को जन्म दे रहा है। ऐसे में, उत्पादन की मात्रा बढ़ाने तथा उसे और अधिक कुशल बनाने की आवश्यकता और प्रेरणा नहीं रह जाती। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के पैरों में बेड़ियाँ डाल दी जाती हैं। बीच-बीच में इसे आगे बढ़ने की कुछ छूट मिलती भी है, तो केवल उस दिशा में जिससे मुनाफ़े के मौजूदा उपक्रमों पर कोई आँच न आये।

इतना ही नहीं, आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी मानव जीवन की बेहतरी से ज़्यादा विनाश और युद्ध की सेवा में लगे हुए हैं। वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय अनुसन्धान में लगी प्रतिभा, संसाधनों और धन का सबसे बड़ा हिस्सा सैन्य अनुसन्धान में लगा हुआ है। सैनिक शोध और अनुसन्धान का व्यय शुद्ध विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसन्धान के मिले-जुले व्यय से बहुत अधिक होता है। यह अनायास नहीं है कि पिछले कुछ दशकों की सबसे बड़ी खोजें – चाहें इण्टरनेट हो या संचार प्रौद्योगिकी के अन्य आविष्कार – रक्षा अनुसन्धान के ही बाई-प्रोडक्ट हैं।

पिछली एक शताब्दी में तमाम बन्धनों के बावजूद विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास जहाँ तक पहुँचा है, उसने इनकी प्रगति की अपार सम्भावनाओं को भी स्पष्ट कर दिया है। आज यह साफ़ हो चुका है कि अगर मौत के उद्योग पर ख़र्च हो रहे संसाधनों को इंसानियत की भलाई की दिशा में मोड़ दिया जाये तो इस दुनिया की कायापलट की जा सकती है। आज भी मनुष्यता विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के जिस स्तर पर खड़ी है, उसके आधार पर पृथ्वी के पर्यावरण को तबाह किये बिना दुनिया की समस्त आबादी को भूख, कुपोषण और अज्ञान से मुक्त कर कई गुना उन्नत जीवन स्तर प्रदान किया जा सकता है। लेकिन यह काम तब तक नहीं किया जा सकता जब तक विज्ञान और प्रौद्योगिकी मुट्ठीभर लोगों की तिज़ोरियाँ भरने और एक छोटी-सी आबादी के लिए विलासिता का सामान

(पृष्ठ 48 पर जारी)

साहित्य का नोबेल पुरस्कार कम्युनिज़्म विरोधी प्रचार मुहिम का एक अंग है

इस बार का साहित्य का नोबेल पुरस्कार रोमानिया की लेखिका हेर्ता म्यूलर को समाजवादी रोमानिया में विस्थापितों के दर्द को बयान करने वाली उनकी कृतियों के लिए दिया गया है। नोबेल पुरस्कार समिति बीच-बीच में साहित्य की दुनिया में अनजान ऐसे लेखकों को पुरस्कृत करने के लिए ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकालती रहती है जिनका लेखन कम्युनिज़्म के विरुद्ध प्रचार में इस्तेमाल किया जा सकता है। हेर्ता म्यूलर भी इन्हीं लेखकों की क़तार में शामिल हैं।

रोमानिया में बसे जर्मन लोगों के विस्थापन को दर्शाने वाली उनकी कृतियों का कोई विश्वस्तरीय साहित्यिक मूल्य नहीं है मगर उनका महत्व इस बात में है कि विस्थापितों की पीड़ा को वे तथाकथित समाजवाद से जोड़कर दर्शाती हैं। यह अलग बात है कि वे जिस ''समाजवादी रोमानिया'' का चित्रण करती हैं दरअसल वह समाजवाद था ही नहीं बल्कि समाजवाद के खोल में सामाजिक फासीवादी सत्ता थी। 1956 में ख्रुश्चेव के नेतृत्व में सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना मुकम्मल किये जाने के बाद रोमानिया, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, बल्गारिया, पूर्वी जर्मनी आदि पूरे पूर्वी यूरोप में समाजवाद के नाम पर नये नौकरशाह पूँजीपति वर्ग की अगुवाई में जो सामाजिक फासीवादी तन्त्र स्थापित हुआ उसमें वे पूँजीवाद की तमाम बुराइयों के साथ जातीय-भाषाई अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव और उत्पीड़न भी शामिल था। मगर इसका समाजवाद से कोई सम्बन्ध नहीं था।

राजकीय पूँजीवाद का संचालन करने वाले अल्पसंख्यक अभिजात वर्ग के कुकृत्यों को समाजवाद के मत्थे मढ़कर समाजवाद को बदनाम करने का खेल बुर्जुआ मीडिया शीतयुद्ध के दिनों से ही खेलता आ रहा है। यह भी उसी मुहिम का एक हिस्सा है।

नोबेल पुरस्कार किस क़दर राजनीति से निर्धारित होते हैं यह अब कोई रहस्य की बात नहीं रह गयी है। ख़ासकर साहित्य के पुरस्कारों में कम्युनिज़्म विरोध की राजनीति बहुत साफ़ तौर पर दिखती रही है। एक ओर ढूँढ़-ढूँढ़कर ऐसे लेखकों को पुरस्कृत किया जाता है जिनके ज़रिये कम्युनिज़्म को बदनाम किया जाये दूसरी ओर ऐसे लेखकों की बहुत बड़ी संख्या है जिन्हें उनके समाजवादी विचारों के कारण पुरस्कृत होने लायक़ नहीं समझा गया।

> "अब क्रान्ति में ही देश का उद्धार है, ऐसी क्रान्ति जो सर्वव्यापक हो, जो जीवन के मिथ्या आदर्शों का, झूठे सिद्धान्तों और परिपाटियों का अन्त कर दे। जो एक नये युग की प्रवर्तक हो, एक नयी सृष्टि खड़ी कर दे, जो मनुष्य को धन और धर्म के आधार पर टिकने वाले राज्य के पंजे से मुक्त कर दे।" – **प्रेमवन्द ('कर्मभूमि' से)**

दुनिया के सबसे बड़े हत्यारे गिरोह के सरगना ओबामा का "शान्ति" का नोबेल पुरस्कार!!

लगता है कि नोबेल पुरस्कार समिति खुद ही नहीं चाहती कि नोबेल पुरस्कारों की राजनीति के बारे में लोग भ्रम में रहें। शायद इसीलिए इस बार का शान्ति का नोबेल पुरस्कार अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा को दिया गया है।

ओबामा ने भी यह भ्रम बनाये रखने की कोई कोशिश नहीं की और अपने पुरस्कार स्वीकार भाषण में साफ़ कर दिया कि उनके लिए शान्ति का मतलब है युद्ध! इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान पर अमेरिकी हमलों को जायज़ ठहराते हुए उन्होंने फ़रमाया कि ये सारे युद्ध दरअसल शान्ति के लिए उनके प्रयासों का ही हिस्सा हैं। वैसे अमेरिका पिछले सौ साल से लगातार ऐसी "शान्ति" के लिए प्रयासरत है। पिछले सौ सालों के दौरान उसने विश्व शान्ति की खोज में परमाणु बम बनाया, उसे दो शहरों पर गिराकर लाखों लोगों को मौत के घाट उतारा, सौ से अधिक बार विभिन्न देशों पर हमला किया, अनगिनत देशों में तख्तापलट कराया, दुनिया को कई बार तबाह कर देने लायक़ हथियार बनाये और उन्हें बेचने के लिए दुनिया भर में युद्ध भड़काये, भयानक घातक रासायनिक हथियार बनवाये... फिर भी दुनिया ज़्यादा से ज़्यादा अशान्त होती जा रही है, तो इसमें बेचारे अमेरिका और उसके शासकों का क्या दोष?

ओबामा ने एक बात सही कही – कि स्थायी शान्ति केवल एक "न्यायपूर्ण युद्ध" से ही आ सकती है। वे मुनाफ़े की हवस में छेड़े गये अपने युद्धों को "न्यायपूर्ण" बता रहे हैं लेकिन वास्तव में "न्यायपूर्ण युद्ध" वह होगा जो दुनिया से पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के ख़ात्मे के लिए छेड़ा जायेगा।

(पृष्ठ 47 से आगे)

जुटाने वाले अनुचर बने रहेंगे। विज्ञान और प्रौद्योगिकी भी पूरी तरह ऐसे ही समाज में विकास कर सकेंगे जो मुनाफ़े की भूख से नहीं बल्कि मानवता के साझा हित की भावना से प्रेरित और संचालित होगा।

बहुत से वैज्ञानिक और विज्ञान के विद्यार्थी प्राय: ऐसा कहते हैं कि वैज्ञानिक तो निष्ठापूवर्क अपना काम करता है, यह देखना उसका काम नहीं है कि उसके काम के नतीजे क्या होते हैं। ऐसे लोगों से हम यही कह सकते हें कि वैज्ञानिक का आविष्कार और उसका प्रभाव सामाजिक ढाँचे से निरपेक्ष नहीं हो सकता। जैसा कि प्रसिद्ध जर्मन कवि व नाटककार बेर्टोल्ट ब्रेष्ट ने कहा है:

"वैज्ञानिक अक्सर दावा करते हैं कि उनके शोध के परिणाम उनके प्रभावों से जुदा होते हैं...। मगर विज्ञान में कोई शाश्वत सत्य नहीं होता। E=Mc2 का फ़ार्मूला शश्वत और स्वतंत्र बताया जाता है लेकिन इसी का प्रभाव यह होता है कि हिरोशिमा दुनिया के नक्शे से मिट जाता है।"